शोध मंथन Vol. XVII No.2 July.-Sept. 2026 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.889 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.071

भारतीय धार्मिक परंपराओं का ऐतिहासिक विकासः निर्मित एवं परिवर्तित प्रथाओं का अध्ययन

प्राप्तिः 14.07.2026
स्वीकृतः 10.09.2026

71

बिजेन्द्र
शोधार्थी (समाजशास्त्र विभाग)
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
मेरठ, उ0प्र0
ईमेलः *bijender. rana88 @gmail.com*

प्रो0 अनु रस्तोगी
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
मेरठ, उ0प्र0
ईमेलः *dranurastogi11@gmail.com*

सारांश

भारतीय धार्मिक परंपराएँ स्थिर एवं अपरिवर्तनीय न होकर निरंतर परिवर्तनशील रही हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय धार्मिक परंपराओं, प्रतीकों, अनुष्ठानों तथा उत्सवों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना है। यह शोध वैदिक काल से आधुनिक भारत तक धार्मिक प्रथाओं में हुए परिवर्तनों, नवाचारों तथा सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि अनेक धार्मिक प्रथाएँ, जिन्हें आज प्राचीन एवं अपरिवर्तित परंपराओं के रूप में देखा जाता है, वास्तव में विभिन्न ऐतिहासिक कालों में विकसित हुईं अथवा उनमें नए तत्वों का समावेश हुआ। शोध में देवी–देवताओं की मूर्तिशास्त्रीय परंपरा, धार्मिक प्रतीकों के विकास तथा उत्सवों के बदलते स्वरूप का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से होली, दीपावली, गणेशोत्सव, दुर्गापूजा तथा अन्य धार्मिक उत्सवों के वर्तमान स्वरूप और उनके ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। साथ ही मध्यकालीन, औपनिवेशिक एवं आधुनिक काल में उत्पन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों के परिणामस्वरूप धार्मिक परंपराओं में हुए परिवर्तनों, पुनर्व्याख्याओं एवं नवाचारों का परीक्षण किया गया है। यह शोध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि भारतीय धार्मिक परंपराएँ निरंतरता और परिवर्तन दोनों की प्रक्रिया से निर्मित हुई हैं। इन परंपराओं का वर्तमान स्वरूप प्राचीन धार्मिक आधारों तथा विभिन्न ऐतिहासिक कालों में जुड़े नए तत्वों का सम्मिलित परिणाम है। अतः भारतीय धार्मिक संस्कृति को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास, सामाजिक संदर्भों और सांस्कृतिक अंतःक्रियाओं का सम्यक् अध्ययन आवश्यक है।

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of Shodhmanthan.*

मुख्य शब्द

भारतीय धर्म, धार्मिक परंपराएँ, ऐतिहासिक विकास, धार्मिक प्रतीक, मूर्तिशास्त्र, उत्सव, अनुष्ठान, सांस्कृतिक परिवर्तन, मध्यकालीन प्रभाव, औपनिवेशिक प्रभाव, आधुनिकता।

प्रस्तावना

भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ अत्यंत समृद्ध, बहुआयामी तथा दीर्घकालिक रही हैं। भारतीय धार्मिक जीवन केवल आस्था का विषय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक व्यवहार तथा सामूहिक स्मृति का भी अभिन्न अंग है। यद्यपि धार्मिक परंपराओं को सामान्यतः शाश्वत एवं स्थिर माना जाता है, किन्तु ऐतिहासिक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि धार्मिक प्रतीक, अनुष्ठान, पूजा–पद्धतियाँ, उत्सव तथा धार्मिक व्यवहार समय के साथ निरंतर परिवर्तित एवं विकसित होते रहे हैं। भारतीय धार्मिक परंपराओं का वर्तमान स्वरूप किसी एक कालखंड या एकमात्र धार्मिक स्रोत की देन नहीं, बल्कि विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के दीर्घकालिक प्रभावों का परिणाम है। मध्यकाल में भक्ति परंपरा, क्षेत्रीय संस्कृतियों तथा सामाजिक परिवर्तनों ने धार्मिक जीवन को नए आयाम प्रदान किए। औपनिवेशिक काल में आधुनिक शिक्षा, मुद्रण, विधिक व्यवस्था, जनगणना तथा प्रशासनिक नीतियों ने धार्मिक परंपराओं को नए संदर्भ प्रदान किए। आधुनिक काल में जनसंचार, बाजारवाद, वैश्वीकरण तथा तकनीकी विकास ने धार्मिक प्रतीकों, देवी–देवताओं, अनुष्ठानों तथा उत्सवों के स्वरूप को व्यापक रूप से प्रभावित किया। आज अनेक धार्मिक उत्सव केवल धार्मिक अनुष्ठान न रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय धार्मिक परंपराओं के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना तथा यह विश्लेषण करना है कि विभिन्न ऐतिहासिक कालों में धार्मिक प्रथाएँ, प्रतीक, देवी–देवताओं की मूर्तिशास्त्रीय परंपराएँ, अनुष्ठानों तथा उत्सवों के स्वरूप में किस प्रकार परिवर्तन हुए। साथ ही यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि भारतीय धार्मिक संस्कृति एक स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील, बहुस्तरीय एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसे समझना भारतीय समाज एवं संस्कृति के विकास को समझने के लिए आवश्यक है।

भारतीय धार्मिक परंपराओं में परिवर्तन की ऐतिहासिक प्रक्रिया

भारतीय धार्मिक परंपराओं को सामान्यतः शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय माना जाता है, किंतु ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि धार्मिक प्रतीकों, अनुष्ठानों, उत्सवों तथा सांस्कृतिक व्यवहारों में समय के साथ निरंतर परिवर्तन होते रहे हैं। भारतीय धार्मिक संस्कृति का वर्तमान स्वरूप प्राचीन परंपराओं तथा विभिन्न ऐतिहासिक कालों में जुड़े नए तत्वों का संयुक्त परिणाम है।

धार्मिक प्रतीकों एवं मूर्तिशास्त्र का विकास

भारतीय धार्मिक परंपराओं में धार्मिक प्रतीकों एवं मूर्तिशास्त्र का विकास एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्रारंभिक वैदिक काल (1500–600 ईसा पूर्व) में धार्मिक जीवन का केंद्र यज्ञ, मंत्र तथा अग्नि, इंद्र, वरुण, सोम और सूर्य जैसी प्राकृतिक शक्तियों की उपासना थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में देवताओं का उल्लेख तो मिलता है, किंतु वर्तमान स्वरूप

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.071

की मूर्तिपूजा अथवा मंदिर–आधारित उपासना के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। वैदिक धार्मिक व्यवस्था मुख्यतः यज्ञीय परंपराओं पर आधारित थी, जहाँ अग्नि को देवताओं तक आहुति पहुँचाने का माध्यम माना जाता था। उत्तरवैदिक एवं पुराणिक काल में धार्मिक जीवन के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस काल में विष्णु, शिव तथा शक्ति परंपराओं का विस्तार हुआ और देवी–देवताओं की कथाएँ पुराणों में व्यवस्थित रूप से संकलित की गईं। धार्मिक विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए देवी–देवताओं के मूर्त रूपों का विकास आरंभ हुआ। मंदिर संस्कृति के प्रसार के साथ मूर्तियों का धार्मिक महत्व भी बढ़ा। भारतीय मूर्तिशास्त्र के विकास में गुप्त काल (चौथी–छठी शताब्दी ईस्वी) को विशेष महत्व प्राप्त है। इतिहासकार इसे भारतीय कला का स्वर्ण युग मानते हैं। इसी काल में विष्णु, शिव, दुर्गा तथा अन्य देवी–देवताओं के मानकीकृत स्वरूप विकसित हुए। उदाहरण के लिए, विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म को स्थायी रूप से स्थापित किया गया। शिव की प्रतिमाओं में जटाजूट, त्रिशूल तथा लिंग रूप को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। दुर्गा की महिषासुरमर्दिनी प्रतिमाएँ भी इसी काल में अधिक संगठित स्वरूप में दिखाई देने लगती हैं। गुप्त काल से पूर्व भी देव प्रतिमाएँ अस्तित्व में थीं, किंतु उनके स्वरूप क्षेत्रानुसार भिन्न थे। गुप्त काल ने धार्मिक प्रतिमाओं के निर्माण के लिए एक मानकीकृत कलात्मक भाषा विकसित की, जिसका प्रभाव बाद के शताब्दियों तक बना रहा। मथुरा, सारनाथ तथा देवगढ़ जैसे केंद्रों से प्राप्त मूर्तियाँ इस विकास के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। मध्यकालीन काल में मूर्तिशास्त्र और अधिक विकसित हुआ। चोल, चालुक्य, पाल, प्रतिहार तथा होयसाल शासकों के संरक्षण में मंदिर कला और प्रतिमा निर्माण ने नई ऊँचाइयाँ प्राप्त कीं। इसी काल में देवी–देवताओं के साथ अनेक प्रतीकों का स्थायी संबंध स्थापित हुआ। उदाहरणार्थ, शिव के साथ त्रिशूल, डमरू, गंगा और अर्धचंद्रय विष्णु के साथ गरुड़य कृष्ण के साथ बांसुरी, मोरपंख और गायय तथा दुर्गा के साथ सिंह और अनेक भुजाओं का संबंध व्यापक रूप से स्वीकार किया गया। ये प्रतीक केवल धार्मिक विश्वासों का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, बल्कि वे धार्मिक कथाओं, पुराणिक आख्यानों तथा सांस्कृतिक कल्पनाओं के दृश्य रूप भी थे। धार्मिक प्रतीकों के विकास का एक महत्वपूर्ण उदाहरण ''ॐ'' है। वैदिक एवं उपनिषदिक साहित्य में ''ॐ'' का उल्लेख एक पवित्र ध्वनि (प्रणव) के रूप में मिलता है, किंतु आज प्रचलित ''ॐ'' का दृश्य प्रतीक बाद के कालों में विकसित हुआ। इसी प्रकार देवी–देवताओं के आधुनिक चित्रात्मक स्वरूप भी प्राचीन काल से अपरिवर्तित नहीं रहे। राजा रवि वर्मा ने 1894 में लिथोग्राफिक प्रेस स्थापित की। इसके बाद देवी–देवताओं के चित्र बड़ी संख्या में छपकर आम जनता तक पहुँचे। पहली बार पूरे भारत में लक्ष्मी, सरस्वती, कृष्ण और राम की लगभग एक जैसी छवियाँ लोकप्रिय हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा रवि वर्मा तथा बाद में कैलेंडर कला के प्रसार ने लक्ष्मी, सरस्वती, कृष्ण एवं अन्य देवी–देवताओं की लोकप्रिय छवियों को व्यापक स्तर पर मानकीकृत किया। औपनिवेशिक काल में मुद्रण तकनीक के विकास ने धार्मिक प्रतीकों एवं छवियों के प्रसार को अभूतपूर्व गति प्रदान की। देवी–देवताओं के चित्र बड़ी संख्या में प्रकाशित होकर जनसामान्य तक पहुँचे, जिसके परिणामस्वरूप अनेक धार्मिक प्रतीकों एवं प्रतिमाओं का एक समान दृश्य स्वरूप स्थापित हुआ। इस प्रक्रिया ने धार्मिक पहचान के निर्माण और धार्मिक प्रतीकों के लोकप्रियकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय धार्मिक प्रतीकों एवं मूर्तिशास्त्र का वर्तमान स्वरूप किसी एक काल या परंपरा की

देन नहीं है, बल्कि यह वैदिक, पुराणिक, मध्यकालीन, औपनिवेशिक एवं आधुनिक प्रभावों से विकसित हुई एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। अतः धार्मिक प्रतीकों और मूर्तियों को केवल धार्मिक आस्था के संदर्भ में नहीं, बल्कि ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से भी समझना आवश्यक है।

मध्यकालीन प्रभाव एवं धार्मिक परंपराएँ

मध्यकालीन काल (लगभग 8वीं से 18वीं शताब्दी) भारतीय धार्मिक इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन का काल था। इस अवधि में धार्मिक परंपराओं का स्वरूप केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित न रहकर जनसामान्य के जीवन का अभिन्न अंग बन गया। भक्ति आंदोलन ने धार्मिक जीवन को नई दिशा प्रदान की तथा धर्म को अधिक व्यक्तिगत, भावनात्मक एवं जनोन्मुख स्वरूप दिया। इस काल में धार्मिक अनुभव को यज्ञ, कर्मकांड एवं संस्कृत–आधारित धार्मिक ज्ञान तक सीमित न रखकर भक्ति, प्रेम तथा व्यक्तिगत आस्था से जोड़ा गया। दक्षिण भारत में आलवार एवं नयनार संतों से प्रारंभ हुई भक्ति परंपरा धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में फैल गई। उत्तर भारत में कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, गुरु नानक तथा चौतन्य महाप्रभु जैसे संतों ने क्षेत्रीय भाषाओं में धार्मिक साहित्य की रचना की। इससे धर्म संस्कृत–आधारित अभिजात वर्ग तक सीमित न रहकर सामान्य जनता तक पहुँच गया। रामचरितमानस, सूरसागर तथा अन्य भक्ति साहित्य ने धार्मिक परंपराओं को लोकजीवन से गहराई से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धार्मिक विचारों के इस लोकतंत्रीकरण ने भारतीय धार्मिक संस्कृति को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया। मध्यकालीन काल में देवी–देवताओं के स्वरूपों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं। कृष्ण की प्रारंभिक ऐतिहासिक छवि एक वीर एवं राजकीय व्यक्तित्व के रूप में मिलती है, किंतु भक्ति आंदोलन के प्रभाव से उनका बाल–गोपाल, मुरलीधर एवं राधा–कृष्ण स्वरूप अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। बांसुरी, मोरपंख, गोपियाँ तथा रासलीला जैसे तत्व इसी काल में व्यापक धार्मिक प्रतीकों के रूप में स्थापित हुए। विषेश रूप से 15वीं–16वीं शताब्दी में वल्लभाचार्य, चौतन्य महाप्रभु तथा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्त कवियों के प्रभाव से कृष्ण की प्रेममय एवं लोकनायक छवि को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। आज कृष्ण की जो लोकप्रिय छवि दिखाई देती है, उसका निर्माण मुख्यतः मध्यकालीन वैष्णव भक्ति परंपराओं के प्रभाव में हुआ।

इसी प्रकार होली के उत्सव में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। प्रारंभिक रूप से यह वसंत ऋतु, कृषि चक्र तथा नई फसल के स्वागत से संबंधित उत्सव था। होलिका दहन का उल्लेख प्राचीन परंपराओं में मिलता है, किंतु रंगों वाली होली का वर्तमान स्वरूप बाद में विकसित हुआ। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति परंपराओं ने होली को राधा–कृष्ण की लीलाओं तथा रंगोत्सव से जोड़ दिया। विशेष रूप से ब्रज क्षेत्र में विकसित कृष्ण भक्ति साहित्य, लोकगीतों तथा रासलीला परंपराओं ने होली को रंगों के उत्सव के रूप में लोकप्रिय बनाया। सूरदास, नंददास एवं अन्य वैष्णव कवियों की रचनाओं में कृष्ण और गोपियों द्वारा रंग खेलने के अनेक वर्णन मिलते हैं। 16वीं–18वीं शताब्दी के राजस्थानी एवं पहाड़ी लघुचित्रों में भी राधा–कृष्ण के होली उत्सव के दृश्य बड़ी संख्या में अंकित किए गए हैं। इतिहासकारों का मत है कि आज प्रचलित रंगों वाली होली का स्वरूप मुख्यतः मध्यकालीन सांस्कृतिक एवं भक्ति परंपराओं का परिणाम है, जबकि इसका मूल आधार प्राचीन वसंतोत्सव में निहित है।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.071

दुर्गा पूजा के विकास में भी मध्यकालीन एवं उत्तर–मध्यकालीन प्रक्रियाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यद्यपि शक्ति उपासना प्राचीन है तथा देवी दुर्गा का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा सप्तशती में मिलता है, किंतु बंगाल में दुर्गा पूजा का व्यापक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप मध्यकालीन काल में विकसित हुआ। 16वीं और 17वीं शताब्दी में बंगाल के जमींदारों एवं कुलीन परिवारों द्वारा भव्य दुर्गा पूजा का आयोजन किया जाने लगा। यह पूजा केवल धार्मिक अनुष्ठान न होकर सामाजिक प्रतिश्ठा एवं सामुदायिक प्रभाव का भी माध्यम बन गई। स्थानीय परंपराओं, क्षेत्रीय शासकों तथा सांस्कृतिक संरक्षण ने इस उत्सव को विशिष्ट पहचान प्रदान की। बाद के काल में दुर्गा की प्रतिमाओं, पंडालों तथा सांस्कृतिक आयोजनों का विस्तार हुआ, जिसने दुर्गा पूजा को बंगाल की सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख प्रतीक बना दिया। इस प्रकार दुर्गा पूजा का वर्तमान स्वरूप प्राचीन शक्ति उपासना तथा मध्यकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक विकास की संयुक्त देन है।

मध्यकालीन भारत में सूफी परंपराओं और भक्ति आंदोलनों के बीच सांस्कृतिक अंतःक्रियाओं ने भी धार्मिक जीवन को प्रभावित किया। सूफी संतों तथा भक्ति संतों दोनों ने ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति एवं आंतरिक आध्यात्मिक अनुभव पर बल दिया। परिणामस्वरूप संगीत, भजन, कीर्तन, कव्वाली तथा सामूहिक धार्मिक अभिव्यक्तियों को व्यापक लोकप्रियता प्राप्त हुई। धार्मिक अनुभव को कर्मकांड की अपेक्षा भक्ति, प्रेम एवं व्यक्तिगत आस्था से जोड़ने की प्रवृत्ति इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता थी। मध्यकालीन काल भारतीय धार्मिक परंपराओं के इतिहास में एक संक्रमणकाल सिद्ध हुआ, जिसमें धार्मिक प्रतीकों, देवी–देवताओं के स्वरूपों, उत्सवों तथा धार्मिक व्यवहारों में व्यापक परिवर्तन हुए। वर्तमान भारतीय धार्मिक संस्कृति के अनेक लोकप्रिय रूप, जैसे राधा–कृष्ण भक्ति, रंगों वाली होली, सामूहिक कीर्तन परंपरा तथा दुर्गा पूजा का क्षेत्रीय–सांस्कृतिक स्वरूप, इसी काल में विकसित हुए अथवा उन्हें व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई।

औपनिवेशिक काल और धार्मिक पुनर्संरचना

ब्रिटिश शासन (1757–1947) भारतीय धार्मिक परंपराओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। इस काल में आधुनिक शिक्षा, मुद्रण तकनीक, जनगणना, प्रशासनिक वर्गीकरण तथा विधिक सुधारों ने भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। धार्मिक पहचान, सामाजिक प्रथाओं तथा सांस्कृतिक व्यवहारों को नए संदर्भों में परिभाषित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक परंपराओं में परिवर्तन, पुनर्व्याख्या तथा मानकीकरण की प्रक्रियाएँ प्रारंभ हुईं। 1871 से प्रारंभ हुई औपनिवेशिक जनगणना ने भारतीय समाज को धार्मिक समुदायों हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि में वर्गीकृत किया। इससे धार्मिक पहचान अधिक संगठित रूप में उभरकर सामने आई। इतिहासकारों के अनुसार इस प्रक्रिया ने धार्मिक समुदायों की सामूहिक चेतना तथा पहचान को नया स्वरूप प्रदान किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रण तकनीक के प्रसार ने धार्मिक ग्रंथों को व्यापक स्तर पर उपलब्ध कराया। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के मुद्रित संस्करणों ने धार्मिक ज्ञान को सीमित वर्गों से निकालकर व्यापक समाज तक पहुँचाया। इससे धार्मिक विचारों का प्रसार हुआ तथा अनेक धार्मिक प्रथाओं का मानकीकरण भी संभव हुआ।

औपनिवेशिक काल में धार्मिक उत्सवों के स्वरूप में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1893 में बाल गंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव को सार्वजनिक रूप प्रदान किया। इससे पूर्व गणेश पूजा मुख्यतः पारिवारिक एवं मंदिर आधारित आयोजन थी। सार्वजनिक गणेशोत्सव ने इसे सामाजिक संगठन, राजनीतिक जागरूकता तथा राष्ट्रीय चेतना के माध्यम में परिवर्तित कर दिया। इसी प्रकार बंगाल में दुर्गा पूजा का पारिवारिक स्वरूप धीरे–धीरे सामुदायिक एवं सार्वजनिक रूप में विकसित हुआ और यह क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण प्रतीक बन गई।

औपनिवेशिक काल सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का भी युग था। इस अवधि में कुछ ऐसी प्रथाओं पर कानूनी प्रतिबंध लगाए गए जिन्हें तत्कालीन समाज सुधारकों एवं प्रशासन द्वारा अमानवीय माना गया। उदाहरणस्वरूप, 1829 में गवर्नर–जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा पर प्रतिबंध लगाया। इस सुधार के पीछे राजा राममोहन राय जैसे भारतीय समाज सुधारकों के प्रयासों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसी प्रकार 1856 के हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियमने विधवाओं को पुनर्विवाह का कानूनी अधिकार प्रदान किया। वैवाहिक सहमति की न्यूनतम आयु अधिनियम, 1891 द्वारा बालिकाओं के लिए सहमति की न्यूनतम आयु बढ़ाई गई, जबकि 1929 के शारदा अधिनियम ने बाल विवाह को नियंत्रित करने का प्रयास किया। धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करने वाले परिवर्तनों में वस्त्र एवं सार्वजनिक जीवन से संबंधित परिवर्तन भी उल्लेखनीय हैं। बंगाल में ज्ञानदानंदिनी देवी द्वारा लोकप्रिय किए गए साड़ी पहनने के आधुनिक निवी शैली तथा ब्लाउज–पेटीकोट के प्रयोग ने महिलाओं के परिधान को नया स्वरूप प्रदान किया। यद्यपि साड़ी स्वयं प्राचीन परिधान थी, किंतु उसका आधुनिक स्वरूप औपनिवेशिक कालीन सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित था।

ब्रह्म समाज (1828), आर्य समाज (1875) तथा अन्य सुधारवादी आंदोलनों ने धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रूढ़ियों पर पुनर्विचार की प्रक्रिया प्रारंभ की। इन आंदोलनों ने मूर्तिपूजा, जातिगत भेदभाव, बाल विवाह तथा अन्य सामाजिक–धार्मिक प्रश्नों पर वैचारिक बहस को जन्म दिया। परिणामस्वरूप धार्मिक परंपराओं की नई व्याख्याएँ सामने आईं और आधुनिकता तथा परंपरा के बीच संवाद स्थापित हुआ। औपनिवेशिक काल भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक पुनर्संरचना का महत्वपूर्ण काल था। इस अवधि में धार्मिक पहचान, सामाजिक प्रथाओं, उत्सवों तथा सांस्कृतिक व्यवहारों में व्यापक परिवर्तन हुए। वर्तमान भारतीय धार्मिक जीवन के अनेक आयाम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से औपनिवेशिक कालीन प्रक्रियाओं, सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा आधुनिक संस्थाओं के प्रभाव से निर्मित हुए हैं।

आधुनिक काल में धार्मिक उत्सवों का परिवर्तित स्वरूप

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा इक्कीसवीं शताब्दी में भारतीय धार्मिक परंपराओं एवं उत्सवों के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक संचार माध्यमों, वैश्वीकरण, तकनीकी विकास तथा बाजारवाद ने धार्मिक जीवन को नए आयाम प्रदान किए हैं। परिणामस्वरूप धार्मिक उत्सव अब केवल धार्मिक अनुष्ठान न रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं मीडिया–आधारित गतिविधियों के महत्वपूर्ण केंद्र बन चुके हैं।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.071

सबसे पहले संचार क्रांति ने धार्मिक परंपराओं के प्रसार को प्रभावित किया। टेलीविजन, रेडियो, इंटरनेट तथा सोशल मीडिया ने धार्मिक विचारों एवं उत्सवों को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया। विशेष रूप से 1987–88 में प्रसारित रामानंद सागर के रामायण तथा बाद में प्रसारित महाभारत धारावाहिकों ने धार्मिक कथाओं एवं पात्रों की एक नई दृश्य पहचान निर्मित की। डिजिटल युग में कोविड–19 महामारी (2020–21) के दौरान अनेक धार्मिक संस्थानों द्वारा डिजिटल माध्यमों से पूजा एवं दर्शन की व्यवस्था की गई, जिसने धार्मिक व्यवहार के नए स्वरूपों को जन्म दिया। इस अवधि में ऑनलाइन आरती, ई–पूजा, वर्चुअल दर्शन तथा इंटरनेट आधारित धार्मिक सेवाओं का प्रचलन बढ़ा। कुछ अवसरों पर गंगा आरती, कुंभ मेले तथा अन्य धार्मिक आयोजनों के लाइव प्रसारण को प्रतीकात्मक धार्मिक सहभागिता के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसे कुछ समाचार माध्यमों एवं धार्मिक संस्थाओं ने वर्चुअल गंगा स्नान अथवा ऑनलाइन तीर्थ अनुभव जैसे नामों से भी प्रचारित किया। यद्यपि यह पारंपरिक धार्मिक अनुष्ठानों का पूर्ण विकल्प नहीं था, तथापि इससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक तकनीक धार्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति एवं सहभागिता के नए रूपों को जन्म दे रही है। आधुनिक काल में धार्मिक उत्सवों का बाजारीकरण भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। दीपावली इसका प्रमुख उदाहरण है। परंपरागत रूप से दीपावली दीप प्रज्ज्वलन, लक्ष्मी पूजा तथा धार्मिक अनुष्ठानों का उत्सव थी। प्राचीन ग्रंथों में दीपों एवं पूजा का उल्लेख मिलता है, किंतु पटाखों का उल्लेख नहीं मिलता। ऐतिहासिक रूप से बारूद का आविष्कार चीन में हुआ तथा बाद में यह भारत पहुँचा। मुगल काल तक आतिशबाजी भारत में प्रचलित हो चुकी थी और बाद में दीपावली जैसे लोकप्रिय उत्सवों में सम्मिलित हुई। बीसवीं शताब्दी में शिवकाशी के व्यावसायिक पटाखा उद्योग तथा आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति ने पटाखों, विद्युत सजावट तथा उपहार संस्कृति को दीपावली का प्रमुख अंग बना दिया। आज दीपावली भारत के सबसे बड़े व्यापारिक अवसरों में से एक मानी जाती है। होली का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है। पारंपरिक रूप से प्राकृतिक रंगों एवं लोक उत्सवों से जुड़ी होली आधुनिक काल में बड़े सार्वजनिक आयोजनों, संगीत समारोहों, प्रायोजित कार्यक्रमों तथा मनोरंजन उद्योग का हिस्सा बन गई है। महानगरीय क्षेत्रों में होली अब धार्मिक उत्सव के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयोजन के रूप में भी देखी जाती है। दुर्गा पूजा एवं गणेषोत्सव में भी आधुनिक परिवर्तनों का प्रभाव स्पश्ट है। विषाल पंडाल, थीम–आधारित सज्जा, विद्युत प्रकाष व्यवस्था, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा कॉर्पोरेट प्रायोजन इन उत्सवों की प्रमुख विशेषताएँ बन चुके हैं। 2021 में यूनेस्को द्वारा कोलकाता की दुर्गा पूजा को मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की सूची में सम्मिलित किया जाना इसके सांस्कृतिक महत्व को दर्शाता है। धार्मिक उत्सव अब स्थानीय धार्मिक आयोजनों के साथ–साथ सांस्कृतिक पर्यटन एवं आर्थिक गतिविधियों के भी प्रमुख केंद्र बन गए हैं। आधुनिक परिवहन एवं पर्यटन उद्योग के विकास ने धार्मिक तीर्थस्थलों के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। वैष्णो देवी, तिरुपति, अयोध्या, काशी तथा अन्य प्रमुख तीर्थस्थल अब धार्मिक केंद्रों के साथ–साथ पर्यटन एवं आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण केंद्र बन चुके हैं। धार्मिक पर्यटन ने स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हाल के दशकों में पर्यावरणीय जागरूकता ने धार्मिक परंपराओं की पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया को जन्म दिया है। गणेशोत्सव में मिट्टी की प्रतिमाओं के उपयोग, दीपावली में हरित पटाखों की अवधारणा तथा पर्यावरण–अनुकूल उत्सवों की बढ़ती

स्वीकृति यह दर्शाती है कि धार्मिक परंपराएँ आज भी बदलती सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को अनुकूलित कर रही हैं। आधुनिक भारतीय धार्मिक उत्सव प्राचीन धार्मिक आधारों, मध्यकालीन सांस्कृतिक विकास, औपनिवेशिक पुनर्संरचना तथा आधुनिक तकनीकी एवं आर्थिक परिवर्तनों के संयुक्त परिणाम हैं। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय धार्मिक परंपराएँ स्थिर न होकर निरंतर परिवर्तन, अनुकूलन एवं पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया से निर्मित होती रही हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय धार्मिक परंपराएँ किसी स्थिर एवं अपरिवर्तनीय व्यवस्था की देन नहीं, बल्कि एक सतत् एवं गतिशील ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम हैं। ये परंपराएँ विभिन्न युगों में उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप निरंतर विकसित होती रही हैं। इस प्रक्रिया में धार्मिक प्रतीकों, देवी–देवताओं के स्वरूपों, अनुष्ठानों, उत्सवों तथा धार्मिक व्यवहारों ने समय–समय पर नए आयाम ग्रहण किए, जिससे भारतीय धार्मिक संस्कृति को व्यापकता एवं जीवंतता प्राप्त हुई। अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि वैदिक, पुराणिक, मध्यकालीन, औपनिवेशिक तथा आधुनिक कालों के प्रभावों ने भारतीय धार्मिक जीवन को निरंतर रूपांतरित किया है। इस रूपांतरण में भक्ति आंदोलन, सामाजिक सुधार आंदोलन, मुद्रण, आधुनिक शिक्षा, जनसंचार, वैश्वीकरण तथा डिजिटल तकनीक जैसे कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी के परिणामस्वरूप वर्तमान भारतीय धार्मिक संस्कृति में परंपरा और परिवर्तन, दोनों के समन्वयित स्वरूप का सहज ही दर्शन होता है। अतः भारतीय धार्मिक संस्कृति को समझने के लिए उसे केवल प्राचीन विरासत या स्थिर परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होती एक बहुस्तरीय एवं गतिशील ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखना आवश्यक है। यही दृष्टि भारतीय समाज, संस्कृति और धार्मिक जीवन के विकास को अधिक गहन, वस्तुनिष्ठ एवं व्यापक रूप से समझने की दिशा प्रदान करती है।

संदर्भ

1. एशर, सी. बी., एवं टैलबॉट, सी. (2006). इंडिया बिफोर यूरोप। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. बाशम, ए. एल. (1954). द वंडर दैट वाज इंडिया। सिडग्विक एंड जैक्सन।
3. ब्रॉक, ए. सेंट एच. (1949). ए हिस्ट्री ऑफ फायरवर्क्स। जॉर्ज जी. हैराप एंड कंपनी।
4. डेविस, आर. एच. (1997). लाइव्स ऑफ इंडियन इमेजेज। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. डोनिगर, वेंडी। (2009). द हिंदूज एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री। पेंगुइन बुक्स।
6. एक, डायना एल. (1998). दर्शन सीइंग द डिवाइन इमेज इन इंडिया (तृतीय संस्करण)। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. फ्लड, गैविन। (1996). एन इंट्रोडक्शन टू हिंदुइज्म। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. हॉब्सबॉम, एरिक, एवं रेंजर, टेरेंस (संपा.). (1983). द इन्वेंशन ऑफ ट्रैडिशन। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. कोसांबी, डी. डी. (1965). द कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑफ एंशिएंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन। रूटलेज एंड केगन पॉल।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.071

10. मिशेल, जॉर्ज। (1988). द हिंदू टेम्पल एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स। यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।
11. शर्मा, रामशरण। (2005). इंडियाज एंशिएंट पास्ट। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. थापर, रोमिला। (2002). अर्ली इंडिया फ्रॉम द ओरिजिन्स टू एडी 1300। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
13. थापर, रोमिला। (2019). द पास्ट ऐज प्रेजेंटरू फॉर्जिंग कंटेम्पररी आइडेंटिटीज हिस्ट्री। एलेफ बुक कंपनी।
14. विश्वनाथन, गौरी। (2003). मास्क्स ऑफ कॉन्क्वेस्ट लिटरेरी स्टडी एंड ब्रिटिश रूल इन इंडिया। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. मार्कण्डेय। (2018). मार्कण्डेय पुराण (दुर्गा सप्तशती)। गीता प्रेस।
16. वाल्मीकि। (2014). वाल्मीकि रामायण। गीता प्रेस।
17. व्यास। (2016). महाभारत। गीता प्रेस।
18. भारत सरकार। (विभिन्न वर्ष). भारत की जनगणना रिपोर्टें। भारत सरकार।
19. यूनेस्को। (2021). कोलकाता की दुर्गा पूजा। मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत सूची।
20. हॉले, जॉन स्ट्रैटन। (2015). ए स्टॉर्म ऑफ सॉन्गसरू इंडिया एंड द आइडिया ऑफ द भक्ति मूवमेंट। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
21. हार्डी, फ्रेडहेल्म। (1983). विरह–भक्ति दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का प्रारंभिक इतिहास। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. जोन्स, केनेथ डब्ल्यू. (1989). सोशियो–रिलिजियस रिफॉर्म मूवमेंट्स इन ब्रिटिश इंडिया। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
23. सरकार, सुमित। (1983). मॉडर्न इंडिया 1885–1947। मैकमिलन।
24. मिटर, पार्थ। (1994). आर्ट एंड नेशनलिज्म इन कॉलोनियल इंडिया, 1850–1922। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
25. पिन्नी, क्रिस्टोफर। (2004). फोटोज ऑफ द गॉड्स द प्रिंटेड इमेज एंड पॉलिटिकल स्ट्रगल इन इंडिया। रिएक्शन बुक्स।
26. कैशमैन, रिचर्ड आई. (1975). द मिथ ऑफ द लोकमान्य तिलक एंड मास पॉलिटिक्स इन महाराष्ट्र। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।